तंत्री वाद्य यंत्र शिल्प कौशल–पारंपरिकता एवं मशीनीकरण

डॉ. वन्दना खुराना
सहायक आचार्य संगीत कंठ, राजस्थान संगीत संस्थान, जयपुर

सार-संक्षेप

संगीत वाद्य यंत्रों का संगीत से बहुत गहरा संबंध है। भारत में वाद्यों, विशेषकर तंत्री वाद्यों एवं उनके निर्माताओं का एक लंबा इतिहास रहा है। समय परिवर्तन के साथ-साथ वाद्य निर्माण की तकनीकों में एवं वाद्यों की वादन शैली दोनों में ही परिवर्तन आए हैं। मशीनीकरण अपने साथ मानकीकरण भी लेकर आया। लेकिन हमें अपने देश के पारंपरिक शिल्प कौशल की संपत्ति की रक्षा करनी होगी और हमें इसके सकारात्मक पहलू को समझने का प्रयास करना चाहिए। सभी वाद्ययंत्र निर्माताओं के योगदान को स्वीकार करें, यह वही कारीगर हैं जो हमारे संगीत जगत की जरूरतों को पूरा करते हैं, उनकी कला को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है और दिया भी जाना चाहिए क्योंकि उचित वाद्ययंत्र के बिना संगीतकार अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सकता। प्रस्तुत लेख तंत्री वाद्यों के शिल्प कौशल एवं उसकी परम्परागतता के तत्वों को दर्शाते हुए उसकी महत्ता पर केन्द्रित है। साथ ही विज्ञान व तकनीक के प्रभाव स्वरूप मशीनीकरण का इस कला पर प्रभाव तथा कुछ कुशल वाद्य निर्माताओं के द्वारा किए गए नवचारों के द्वारा जो निज तत्व दिया गया उनका वर्णन प्रस्तुत करना लेख का उद्देश्य है। प्रस्तुत शोध लेखन में मिश्रित शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है जिसमें शोध विषय से संबंधित साहित्य की समीक्षा तथा वर्णनात्मक विधि सम्मिलित है।

मुख्य शब्द–तंत्री वाद्य, हस्तशिल्प कला, अनुनादक, सखानी, बारा, मशीनीकरण

शोध-पत्र

प्रस्तावना

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन के बाद वादन कला को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। वादन कला में विभिन्न वाद्य यंत्र समावेशित हैं जिनमें तंत्री वाद्यों का क्षेत्र अत्यन्त विकसित एवं विस्तृत है। संगीत के मूल तत्वों की दृष्टि में वाद्य कला यथार्थतः संगीत की पूर्णरूपेण प्रतिनिधि कला है। (मिश्र 9)

वाद्यों में भी तंत्री वाद्यों को अन्य तीन वर्गों यथा–अवनद्ध, सुषिर व घन में प्रमुख स्थान दिया गया है। इसका कारण है तंत्री वाद्यों की ध्वनि को मानवीय कंठ से निकली ध्वनि के सबसे निकट माना जाता है।

संगीत वाद्य यंत्र निर्माण का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि वाद्य संगीत का। प्राचीन काल से ही वाद्य संगीत की उन्नति व विकास हेतु वाद्य निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता रहा है और यह प्रक्रिया अनवरत चलती आ रही है। जैसे-जैसे मनुष्य सभ्य व सुसंस्कृत होता गया वैसे-वैसे उसके द्वारा निर्मित व प्रयोग किये जाने वाले संगीत वाद्य भी विकसित व परिष्कृत होते गए। वाद्यों के विकास व परिष्करण की प्रक्रिया दो रूपों यथा–बाह्य स्वरूप में परिवर्तन तथा आंतरिक स्वरूप (वादन सामग्री) में परिवर्तन में सम्पन्न हुई। यह दोनों ही परिवर्तन एक-दूसरे पर आश्रित हैं क्योंकि वाद्य से निकलने वाली ध्वनि उसके स्वरूप व उसमें प्रयुक्त सामग्री की गुणवत्ता पर ही निर्भर करती है। यदि वाद्य निर्माण साधारण तरीके से किया गया है तो वाद्य की ध्वनि उच्च कोटि की नहीं होगी।

किसी भी वाद्य की टोन तथा उसकी वादन तकनीक उस वाद्य की बनावट व उसके निर्माण में प्रयुक्त सामग्री तथा वाद्य निर्माण की तकनीक पर ही निर्भर करती है। यदि कलाकार वाद्य की ध्वनि में परिवर्तन चाहता है तो उसे उसके ढाँचे, सामग्री, वाद्य निर्माण तकनीक में परिवर्तन करना होता है। इन परिवर्तनों के कारण ही प्राचीनकाल से वर्तमान तक सैकड़ों वाद्य हमारे समक्ष हैं।(कासलीवाल 144-145)

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक के तंत्री वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास यात्रा का अवलोकन करें तो यह तथ्य सामने आता है कि समय व रुचि परिवर्तन, विज्ञान व तकनीक का प्रचार-प्रसार, मशीनीकरण तथा वाद्यों और वादन के दोषों को दूर करने हेतु परिवर्तन व परिशोधन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिनके परिणामस्वरूप नवीन वाद्यों की उत्पत्ति हुई तथा साथ ही तंत्र वाद्य निर्माण कला व निर्माताओं का आर्विभाव हुआ।

वाद्य निर्माण एक हस्तशिल्प कला–प्राचीनकाल में वाद्य निर्माण कला कुछ शिल्पकारों तक सीमित थी किन्तु भारतीय संगीत के वैश्विक स्तर पर प्रचार-प्रसार के कारण इस कला में सुधार होता गया तथा इसके शिल्पकारों की संख्या भी बढ़ती गई। संगीत कला की ही भाँति वाद्य

निर्माण कला भी परम्परागत व वंशानुगत रूप से सीखी व सीखायी जाने वाली कला है। इस कला में अधिकाशतः प्रकृति प्रदत्त नैसर्गिक सामग्री प्रयुक्त होती है। इसे एक हस्तशिल्प कला के रूप में स्वीकार किया गया।

तंत्री वाद्यों में प्रयुक्त परम्परागत सामग्री एवं विज्ञान-तकनीकी का प्रभाव–प्राचीन ग्रंथों में तंत्री वाद्यों (विशेष रूप से विभिन्न प्रकार की वीणाओं) की निर्माण विधि के उल्लेख से ज्ञात होता है कि इनके निर्माण में लकड़ी, बांस, बारहसिंगा का सींग, हाथी दाँत, ऊँट, बैल की हड्डियाँ, भेड़ बकरे की आतों, दुर्वा, मूंज आदि के बने तार आदि सामग्री का प्रयोग किया जाता था और वर्तमान में भी कुछ सामग्री को छोड़कर अन्य सामग्री समान रूप से ही प्रयुक्त होती है।

तंत्री वाद्यों में अनुनादक के रूप में तुंबा का प्रयोग होता आया है। हमारे देश में पंढरपुर (महाराष्ट्र) व हुबली (कोलकाता) में तुम्बे हेतु विशेष फल (जंगली कद्दू) की खेती होती है। यह भाग पूर्णतः प्राकृतिक सम्पदा पर आधारित है और इसे तुम्बे के रूप में लाने तक शिल्पकार को एक लंबे समय तक देख-रेख व कड़ी मेहनत करनी पड़ती है।

इसी प्रकार से तंत्री वाद्यों में कंपित पदार्थ अर्थात तारों के लिए जहाँ प्राचीनकाल में दुर्वा, मूंज अथवा जानवरों की हड्डियों का प्रयोग होता था वहीं विकास क्रम में तकनीकी प्रभाव से धातु (फौलाद, पीतल, तांबा) निर्मित तंत्रियों तथा नायलिन स्ट्रिंग का प्रयोग भी किया जाने लगा है। वर्तमान समय में तंतू वाद्यों में जर्मन की रोजलु नामक कम्पनी द्वारा निर्मित फौलाद की तारों का प्रयोग किया जाता है।

तंत्री वाद्यों में लकड़ी का विशेष महत्त्व एवं भूमिका होती है। वाद्य की ध्वनि व गुण उसमें प्रयुक्त लकड़ी पर निर्भर करती है। ऋग्वेद में बाण नामक तंत्र वाद्य को बनाने के लिए औडम्बर नामक लकड़ी को प्रयोग में लाने को कहा गया है।(मिश्र 20)संगीत सार में तत वाद्य के लिए कटहल के काठ को प्रयोग करने के लिए कहा गया।(सहस्त्रबुद्धे 74) वर्तमान में टीक व तुन (विशेष रूप से सितार) तथा शीशम, आबनूस, आम आदि लकड़ी का प्रयोग होता है। वास्तव में तंत्री वाद्यों में कौन सी लकड़ी किस वाद्य के लिए उपयुक्त होगी, किस लकड़ी के प्रयोग से वाद्य ध्वनि उच्च स्तर की प्राप्त होगी। इन सबकी परख एक कुशल वाद्ययंत्र निर्माता ही कर सकता है। यह पक्ष पूर्णतः उसकी व्यक्ति की सूझ बूझ एवं अनुभव पर निर्भर करता है।

तंत्री वाद्यों के अंगों के निर्माण शैली व मानकीकरण–तंत्री वाद्यों में लकड़ी का प्रयोग तबली, डांड, गुलु तथा खूटियों के लिए होता है। तबली के मोटे या पतलेपन से उससे निकलने वाली ध्वनि प्रभावित होती है। अधिक ध्वनि के लिए पतली तथा ध्वनि की स्थिरता के लिए तबली चौड़ी ली जाती है। वर्तमान में तबली का एक निश्चित माप है। पहले तबलियाँ समतल होती थीं परन्तु अब घुड़च के पास थोड़ी गोलाई ली हुई होती है। इसी प्रकार पूर्व में डांड भी बिना माप के होते थे। वाद्य निर्माता अपने अनुभव के आधार पर डांड का निर्माण करते थे। परिणामस्वरूप यदि डांड लंबी बनती थी तो मींड का काम संभव नहीं होता था और यदि मोटी गोल बनती थी तो वादन में मुश्किल आती थी। पहले के डांड गुलु के बिल्कुल सीध में 90 डिग्री के कोण पर रहते थे जिसके कारण तारों की स्थिति सितार के डांड के बीचों बीच थी फलस्वरूप मींड खीचने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं मिल पाता था।(शाह 67)

वाद्य निर्माताओं के अनुसार डांड की लंबाई व चौड़ाई का सही माप होना भी अति आवश्यक है क्योंकि डांड की लम्बाई द्वारा ही कारीगर स्केल निर्धारित कर पाते हैं। उदाहरण के लिए यदि सितार को सी स्केल का बनाना है तो डांड की लम्बाई 35 इंच व डी स्केल के लिए 34 इंच होनी चाहिए।

डांड की चौड़ाई मुंडा सितार (विलायत खां स्टाईल) में साढ़े तीन इंच व गुलाब व खजुर पल्ला सितार (पंडित रविशंकर स्टाईल) के लिए साढ़े तीन इंच एक सूत होनी चाहिए।(चौधरी 70)

ये सभी मानक पूर्व में बिना माप के आधार पर बनाए गए वाद्यों में आयी कमियों को दूर करने हेतु बनाए गए और मानकीकरण से वाद्यों की टोन में निश्चितता आई।

गुलु/कंठा–डांड तुम्बे व तबली को जोड़ने का कार्य करता है गुलु या कंठा। इसके लिए टीक या तुन लकड़ी के गुटके का आवश्यक माप के आधार पर चयन कर सखानी नामक उपकरण के छिलकर उस गुलु का रूप देते हैं और उस पर नक्काशी करते हैं।

तंत्रियाँ–तंत्री वाद्यों का सबसे महत्त्वपूर्ण सामग्री है तंत्रियाँ। प्राचीन वैदिक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में तंत्रियाँ मूंज, दुर्वा, रेशम के धागों तथा जानवरों के बालों व आंतों से निर्मित की जाती थीं। जिनसे प्राप्त ध्वनि अधिक मधुर व गूँज युक्त होती थी। इसके पश्चात अष्ट धातुओं का प्रयोग प्रारम्भ हुआ जिसमें लौह, पीतल, तांबे के तारों को अधिक महत्त्व दिया गया। तंत्रियों में उपर्युक्त परिवर्तन उनकी ध्वनि में तारता, तीव्रता एवं गुण की दृष्टि से विकास का द्योतक है। आज जो विशेषताएँ इन तंत्रियों में पायी जाती है वे प्राचीन तंत्रियों में नहीं पायी जाती थीं किन्तु फिर भी उनमें मधुरता कम नहीं थी। तंत्रियों में जो भी परिवर्तन होता है वह मुख्यतः गूँज की वृद्धि को ध्यान में रखकर होता है।

पूर्व में तंत्रियों के निर्माण में बारा नामक उपकरण का प्रयोग होता था जो हीरे का बना होता था जिसका प्रयोग सुनार सोने चाँदी के तार बनाने में करते थे। इस उपकरण में विभिन्न गेज के छिद्र होते थे जिनमें से धातु को आवश्यक मोटाई वाले छेद से गुजारकर तंत्री (लोहे की) का निर्माण किया जाता था किन्तु अब यह प्रक्रिया काम में नहीं ली जाती। वर्तमान में तंत्री वाद्यों की तारें जर्मनी व जापान आदि देशों से मँगवायी जाती है जबकि वहाँ इनका निर्माण किसी अन्य कार्य के लिए होता है। इन विदेशी तारों की ध्वनि गुणवत्ता, तारता, तीव्रता आदि उच्च कोटि के होने के कारण हमारे संगीतज्ञों द्वारा इन्हें पसन्द किया जाता है।

सामग्री में परिवर्तन एवं मशीनीकरण का प्रभाव–तंत्री वाद्यों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्रियों में प्राकृतिक वस्तुओं के साथ साथ आधुनिक कालीन अप्राकृतिक मशीन निर्मित सामग्री जैसे–प्लास्टिक, फाइबर, सैल्यूलाइड आदि का प्रयोग होने लगा है तथा वाद्य निर्माण के उपकरणों में धीरे-धीरे पारम्परिक उपकरणों के साथ मशीनी उपकरण (विद्युत

चलित) का प्रयोग भी होने लगा है। मशीनीकरण के साथ-साथ वाद्यों के प्रत्येक भाग का तथा तारों आदि के माप भी निश्चित होने लगे हैं जिससे मानकीकरण को बढ़ावा मिला है।

पूर्व में कलाकारों की वादन शैली में विशिष्टता होती थी तथा वे अपने वाद्यों को अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तित व परिशोधित करवाते थे। ऐसे कलाकारों के द्वारा परिशोधित वाद्यों के मानकों से ही वाद्य को एक अलग पहचान भी मिली जैसे उस्ताद विलायत खां का मुंडा सितार तथा पंडित रविशंकर जी का गुलाब पत्ती या अंगूर पत्ती सितार।

वाद्य निर्माताओं का शिल्प कौशल–यह सत्य है कि पूर्व के कई दिग्गज कलाकारों ने अपने वाद्यों में जो परिवर्तन किए या माप निश्चित किए वे ही आगे चलकर सामान्य मानकों में परिवर्तित हुए किन्तु ये संभव हुआ–वाद्य निर्माताओं के कला कौशल से।

भारत में कई वाद्य निर्माता पीढ़ियों से इस हस्तशिल्प कला की परम्परा को संरक्षित किए हुए हैं। ऐसे ही कुछ सुप्रसिद्ध वाद्य निर्माताओं एवं उनके कला कौशल के उदाहरण निम्नलिखित हैं–

1. कोलकाता के दामोदर अधिकारी एवं उनके पुत्र श्री नित्यानंद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इन्होंने ही सितार के पर्दों के किनारों को गोलाई प्रदान की तथा वाद्यों के नाप को प्रमाणिकता प्रदान की।

2. कोलकाता के ही प्रसिद्ध तंत्र वाद्य निर्माता श्री हीरेन राय ने जर्मन सिल्वर के पर्दे बनाना प्रारम्भ किया। पूर्व में ये लोहे या निकिल के बनते थे। इन्होंने निखिल बैनर्जी की शैली के विकास हेतु अधिक गोलाईदार पर्दे प्रारम्भ किए और सितार से तारगहन के पहले एक अतिरिक्त जवारी का प्रावधान किया जिससे मंद्र सप्तक के स्वर अधिक सुनाई देने लगे।(कासलीवाल 153)

सुप्रसिद्ध सितार वादक मणिलाल नाग के अनुसार कलाकार जिस प्रकार श्रोताओं की रुचि अनुरूप अपनी कला प्रस्तुत करता है उसी प्रकार हीरेन राय ने मेरी वादन तकनीकियों के आधार पर मेरे कल्पना को समझकर मेरे वादन के अनुरूप सितार का निर्माण किया जो एक उत्कृष्ट वाद्य निर्माता का गुण है।(शर्मा 107)

3. मिरज के श्री फरीद साहेब ने प्राकृतिक सामग्री के प्रयोग से कई नवाचार प्रस्तुत किए। आपने गोंद के लिए मोची से प्राप्त चर्म को पीसकर विशिष्ट विधि से चिपकाने वाला पदार्थ बनाया। सितार-तानपूरे के गुलु व तुम्बे के बीच के जोड़ के लिए बैर या पीपल के पेड़ से प्राप्त राल या ताक को कूटकर चिपकाने के लिए पदार्थ बनाया। लकड़ी को पालिश करने के लिए घर पर बने सैंड पेपर का प्रयोग किया, रंग बनाने के लिए पान के मिश्रण को पीसकर लाल रंग बनाया। साथ ही बेलगांव के किसी चिकित्सक से चमड़े का प्रयोग सीखकर उसे मैथिलेटिड स्प्रिट में मिलाकर पालिश बनायी। टूटी हुई छतरियों की तिलियों को भट्टी में गलाकर तारें बनायी।

4. मिरज के अब्दुल करीम सतारमेकर के वंश परम्परा में रहे अब्दुल रहमान ने सर्वप्रथम फोल्डिंग सितार बनाया जो तंत्र वाद्य निर्माण में एक नया कीर्तिमान था।

5. दिल्ली के प्रसिद्ध वाद्य निर्माता श्री बिशनदास ने सितार में अधिक मींड हेतु डांड को टेढ़ा करके लगाया तथा आपने सितार के लिए एक ही पेड़ की लकड़ी के प्रयोग पर बल दिया। उनका मानना था कि इससे सितार की टोनल क्वालिटी उत्तम रहती है। इसके अतिरिक्त ब्रिज के लिए एबोनी लकड़ी व डार्लेन प्लास्टिक का प्रयोग प्रारम्भ किया जैसा कि विदेशी वाद्यों में किया जाता है और इससे हड्डी की तुलना में ज्यादा मेलॉडी प्राप्त होती है। आपका मानना था कि इस प्रकार के ब्रिज सालभर तक कटते नहीं इसीलिए रियाज के लिए उत्तम हैं।

6. दिल्ली के आर.के. मोहन मैकर्स के श्री मोहन सिंह ने बिना जोड़ वाली सितार फ्रांस के पैटिट मिल के सुझाव पर सारंगी डी मोड नामक वाद्य तथा गिटार के तारों का प्रयोग करते हुए सुरसोटा नामक वाद्य का भी आविष्कार किया।

उपर्युक्त इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हमारे देश में ऐसे वाद्य निर्माता मौजूद हैं जिन्होंने अपने कौशल एवं ज्ञान से इस हस्तशिल्प कला को विकसित व संरक्षित करके तंत्री वाद्य संगीत को और अधिक समृद्ध बना दिया।

विज्ञान व तकनीक का प्रभाव– भारतीय तंत्र वाद्य निर्माण कला पूर्णतः विज्ञान आधारित कला है। तंत्री वाद्यों की बनावट व ध्वनि गुणवत्ता में हुए विकास का आधार वैज्ञानिक सोच व वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग ही है। प्राचीन काल की अपेक्षा अधिकाशतः आधुनिक कालीन वाद्य निर्माता पढ़े-लिखे हैं और इन्होंने अपनी शिक्षा के बल पर इस हस्तकला को परिष्कृत किया है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि पूर्व के कारीगर जो अनपढ़ थे या कम पढ़े-लिखे थे उनमें प्रतिभा की कमी थी उन्होंने अपने ज्ञान व अनुभव के आधार पर इस कला को समृद्ध एवं संरक्षित किया।

आधुनिक काल में विज्ञान के प्रसार ने जो सुविधाएँ व मशीनें प्रदान की है उसके प्रयोग से वाद्य निर्माण कला को संबल मिला है, उसमें सुधार हुआ है। परिणामस्वरूप नवीन तंत्री वाद्यों का आविष्कार हुआ तथा प्रचलित वाद्यों की कमियाँ दूर हुई हैं।

मशीनीकरण से लाभ यह हुआ कि तंत्री वाद्यों में प्रयुक्त होने वाली नैसर्गिक सामग्री लकड़ी, खाल, जानवरों के सींग, हड्डियाँ, बाल आदि जो आज के समय उपलब्ध नहीं हो पाते उनके स्थान पर मशीन निर्मित सामग्री का प्रयोग संभव हुआ। जैसे श्री बिशनदास शर्मा जी ने 1985 में प्राकृतिक तुम्बे की कोमलता को ध्यान में रखते हुए फाईबर ग्लास के तुम्बे युक्त सितार बनाये जो कि मजबूत भी होते हैं हालाँकि इनकी ध्वनि गुणवत्ता प्राकृतिक तुम्बे वाली सितार से कम ही रहती है। इस प्रकार के सितार का प्रयोग सम्भवतः वर्तमान समय में कोई कर भी नहीं रहा है।

विदेशी वाद्य निर्माता पॉल वैन डे (हालैण्ड) ने सितार का तूंबा बनाने के लिए इनके प्रतिरूप / नमूने के लिए लकड़ी के साँचे का प्रयोग किया जिसका सिलीकॉन (अधातु) साँचा बनाने के लिए प्रयोग किया गया। तत्पश्चात वाद्य का मूल आकार कार्बन हाईफन रिडनफोर्स्ड एपौक्सी लाक की परत चढ़ाकर सिलीकॉन साँचे से प्राप्त किया जाता है। सूखने के बाद नया आकार साँचे के अलग किया जाता है। इस प्रकार परम्परागत सितार बनाने के समय तीन महत्त्वपूर्ण भागों तुम्बा, गुलु व डांड को जोड़ने की समस्या आड़े नहीं आती है। इससे वाद्य की गुणवत्ता में भी कमी नहीं आती। (Rao)

मशीनीकरण के कारण पूर्व में ब्रिज, मनकों, तार गहन, अटी, फुलियाँ आदि के लिए प्रयुक्त हाथी दाँत, बारहसिंगा का सींग, ऊँट की हड्डियों का स्थान प्लास्टिक से बने पार्टस ने लिया। इसी प्रकार गज से बजने वाले तंत्री वाद्यों में पहले घोड़े के पूँछ के बाल प्रयुक्त होते थे किन्तु वर्तमान में प्लास्टिक के बने बाल गज में लगाये जाते हैं जिसे कलाकार भी पसन्द करते हैं और उसके घर्षण से ध्वनिगुणवत्ता में भी अंतर नहीं आया है।

निष्कर्ष

संगीत वाद्य निर्माता का कौशल बिल्कुल वैसा ही होता है जैसा कि सुनार का जो दीर्घकालीन अभ्यास का परिणाम होता है। आधुनिक तकनीकों में वाद्य निर्माण को सरल भी किया और उसमें सुधार भी किए। वाद्य निर्माता सदैव ही पारंपरिकता एवं नवीन तकनीक को शीघ्र अपनाने में संतुलन रखते आए हैं।

मशीनीकरण ने मास प्रोडक्शन को संभव किया। साथ ही मशीनीकरण ने वाद्यों के मूल्य को भी नियंत्रित किया। किन्तु यह सत्य नहीं भुलाया जा सकता कि किसी भी वाद्य की उत्तम गुणवत्ता की माँग सदैव बनी रहती है और उसके लिए उच्च कोटि के व्यक्तिगत कौशल का होना आवश्यक है। कोई भी वाद्य बड़े पैमाने पर उत्पादित पार्टस से बनकर आता है तो वह उस प्रथम वाद्य का मुकाबला नहीं कर सकता जो कि कुशल कारीगर ने प्रथमतः अपने हाथों से बनाया हो और तब तक संतुष्ट न हुआ हो जब तक उसने उसके एक एक पक्ष की जाँच न कर ली हो। भारत की अपेक्षा विदेशों में वाद्य निर्माण कला पूर्णतः मशीनी उपकरणों पर आधारित है। इसका कारण है कि वहाँ वाद्य निर्माण कंपनियों द्वारा किया जाता है जिसमें वाद्यों के मापों, सुन्दरता व ध्वनि गुणवत्ता में समानता रहती है। मशीनों की सहायता से एक गुण आकृति के हजारों वाद्यों का निर्माण हो पाता है किन्तु भारत में यह कला पूर्णतः हस्तशिल्प कला है। इस कला में किसी भी वाद्य का निर्माण विभिन्न चरणों में होता है और प्रत्येक चरण को सम्पन्न करने वाले कारीगर भी अलग-अलग होते हैं। एक तंत्री वाद्य के निर्माण का प्रथम चरण मूलभूत ढाँचे का निर्माण, तत्पश्चात नक्काशी कार्य, ढाँचे पर सेलयूलाइड चिपकाना, सैल्यूलाइड को चिपकाकर इनग्रेविंग करना तथा पॉलिश करना। अंत में उसमें तारों परदों को लगाकर जवारी की जाती है। इन सभी चरणों को अलग-अलग कारीगर सम्पन्न करते हैं। कुछ निर्माता स्वयं ही सभी चरणों का कार्य स्वयं भी कर लेते हैं।

इस कला से जुड़े बहुत से शिल्पकार परिवार ऐसे हैं जिनके घर में कई पीढ़ियों से इसी कला के सहारे जीविकोपार्जन किया जाता रहा है। एक एक तंत्री वाद्य को तैयार करने में कई दिनों महीनों की मेहनत लगती है। दुर्भाग्यवश बड़े व्यापारी इन कारीगरों को उचित मेहनताना भी नहीं देते और स्वयं इन तंत्री वाद्यों के दुगुने चौगुने दामों में बेचकर मुनाफा कमाते हैं। साथ ही कहीं-न-कहीं मशीनीकरण ने भी तंत्री वाद्य शिल्पकारों को हानि पहुँचायी है। इन कारीगरों को तथा इनकी कला को लघु उद्योग के रूप में किसी सरकारी संस्था से जोड़कर विकसित किया जाना चाहिए जिससे इनकी कला को पहचान मिले उसका उचित मूल्य मिले ताकि यह कला भविष्य में भी यथावत संरक्षित एवं विकसित हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

मिश्र, लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1973

कासलीवाल, सुनीरा, सुर तार कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 2002

मिश्र, लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1973

सिंह, महाराजा सवाई प्रताप, संगीत सार भाग-2, बी.टी. सहस्त्रबुद्धे, पूना, 1910-1912

शाह, राजेश, सितार विज्ञान शास्त्र एवं प्रयोग, कला प्रकाशन बीएचयू वाराणसी, 2013

चौधरी, सिद्धार्थ, प्रमुख तंत्र वाद्य एवं निर्माण कला, कला प्रकाशन बीएचयू वाराणसी, 2020

कासलीवाल, सुनीरा, सुर तार, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2002

शर्मा, योगिता, हिन्दुस्तानी संगीत में तंत्र वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृत्तियाँ, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008

Rao, Suvarnalata, Sitar making today Problems & prospect of the craft, sangeet natak Journal No.135-36, 200000

महाडिक, प्रकाश, भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य, मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी भोपाल, प्रथम संस्करण, 1994

Banerjee, Kaushik, Indian String Musical instrument : making & makers, Prakashani Pvt. Ltd. Agartala, Edition 2017.

मंगलाराम, तंत्री वाद्य निर्माण ध्वनिकी एवं नवीन प्रयोग, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2022